कुछ बातें - बीते ज़माने की

●रोहित धनकर

गणित ही एक ऐसा विषय था जिससे गांव के लोग अपने को कुछ जोड़ पाते थे। साथ ही घर का माहौल भी गणित के प्रति समझ बनाने में मददगार साबित हुआ। गणित अच्छा क्यों लगता है, एक आम अनुभव।

मुझे गणित क्यों अच्छा लगता है? यह एक व्यक्तिगत सवाल है जो किसी भी आम आदमी से पूछा जा सकता है। लेकिन किसी भी आम आदमी की व्यक्तिगत रुचियों या रुझानों में अन्य लोगों की रुचि क्यों होगी? वे क्यों जानना चाहेंगे? जब हम इस प्रकार की बात पूछते हैं तो शायद कहीं हमारे मन में आशा होती है कि उनके उत्तर के आधार पर हम कुछ सामान्य नतीजे निकाल सकेंगे, जिनसे यह पता चल सके कि जिन लोगों को गणित अच्छा लगता है, उनमें क्या कोई ऐसी बातें हैं जो सबके साथ एक जैसी होती हैं?

यदि मेरी यह पूर्वमान्यता सही है तो इस सवाल का जवाब ईमानदारी और गंभीरता से देने का प्रयत्न करना चाहिए। पर पहले मैं यह स्पष्ट कर दूं कि ये सवाल किसी गणितज्ञ से या इस प्रकार के किसी व्यक्ति से नहीं हैं। एक सामान्य व्यक्ति जिसकी गणित में रुचि है, गणित का विद्यार्थी है, हम और आप कह सकते हैं गणित से प्रेम करता है, ऐसे व्यक्ति से ये सवाल हैं। मुझे ऐसा लगता है कि मुझे दो क्षेत्रों को काफी ध्यान से देखना पड़ेगा, इस सवाल का उत्तर ढूंढने के लिए।

पहला क्षेत्र मेरे व्यक्तिगत अतीत का क्षेत्र है तो दूसरा मेरी मानसिक बनावट का और उस मानसिक बनावट से गणित के स्वरूप के सामंजस्य का क्षेत्र है। ये दोनों क्षेत्र एक दूसरे से अछूते नहीं हैं। निश्चित रूप से व्यक्तिगत अतीत का मानसिक बनावट

पर बहुत गहरा असर होता है और सब लोगों की तरह मुझ पर भी हुआ होगा। उन दोनों क्षेत्रों के बारे में कुछ कहने की कोशिश करूंगा।

●

पहले व्यक्तिगत अतीत के क्षेत्र को लेते हैं। मैं जिस गांव में पला बढ़ा हूं, उसमें जो लोग उस वक्त रहते थे उनके मन में गणित का एक खास स्थान था। ये मैं इसीलिए कह रहा हूं क्योंकि हम स्कूली बच्चों से जो बड़े लोग थे और जो स्कूल भी कभी नहीं गए थे, वे हमसे पहेलियां पूछा करते थे। उन पहेलियों में से जो मुझे याद हैं वो अधिकतर गणित से संबंधित हुआ करती थीं। एक उदाहरण दें तो कुछ इस प्रकार की बात हम लोगों से पूछी जाती थी, उस समय- 'सौ मन का लक्कड़, उस पर बैठा मक्कड़, रत्ती-रत्ती खाए तो बताओ कितने दिन में खाएगा?' अब पूछने वाला तो यह सवाल पूछ के चुप हो जाता था। लेकिन हमारे मन में कई सारी चीज़ें उठने लगती थीं कि सौ मन का लक्कड़ है और उसके ऊपर मक्कड़ बैठा है जो एक दिन में एक ही रत्ती खाता है तो उस रत्ती का और मन का क्या संबंध है? और फिर हम बहुत सारे लोगों से पूछते रहते थे कि ये रत्ती और मन का क्या संबंध है? ये सारी पूछ-ताछ करने के बाद जितना जोड़-बाकी-गुणा-भाग हम लोगों को आता था, उससे उसको हल करने की कोशिश करते थे। लेकिन जो व्यक्ति पूछता था उसको तरीका आए-न-आए उत्तर तो पहले से पता होता ही था। इधर हम लोग हल ढूंढने के लिए एक लंबी प्रक्रिया से गुज़रते और उसके बाद वो हमें तुरंत एक नतीजा सुना देता था कि सही है या गलत है। हमें लगता था कि यह तो बहुत पारंगत व्यक्ति है। यह तो एक उदाहरण है। ऐसी बहुत सारी पहेलियां हम लोगों से पूछी जाती थीं।

इस बात का एक कारण शायद यह भी हो सकता है कि स्कूली पढ़ाई में जो कुछ भी होता था, उसमें से शायद गणित ही एक ऐसी चीज़ थी जिसे गांव वाले समझ सकते थे और जिसके साथ कुछ जुड़ाव महसूस कर सकते थे। इसके अलावा जो भी अन्य बातें हमें प्राइमरी में अन्य विषयों के रूप में पढ़ाई जाती थीं वो तो ऐसी भाषा में और ढंग से लिखी हुई होती थीं कि गांव वाले अपने साथ उनका कोई रिश्ता देख ही नहीं पाते थे। गणित की जो मूल क्षमताएं हैं उनसे वे ज़रूर अपना रिश्ता देखते थे। हो सकता है मेरी यह बात सही न हो, यह एक ख्याल मात्र है। जब मैं कुछ और बड़ा

पैसे देने वाला मूल, ब्याज आदि की गणना पहले से करके रखता था लेकिन इसके बावजूद वो थोड़ा-सा यह देखना चाहता था कि जिसने हिसाब लिखा है वो भी उस ढंग से करता है क्या? इससे हमारे ऊपर गांव वालों के सामने यह सिद्ध करने की बात रहती थी कि हम हिसाब ठीक से कर पाएं।

हुआ तो मैने एक चीज़ और महसूस की कि गांव में जब लोग कोई सौदा खरीदते थे या कोई ब्याज वगैरह का हिसाब लगवाते थे तो बही में पैसे लिखवाते थे। उस समय किसी स्कूली बच्चे को पकड़कर उससे इस प्रकार के हिसाब करवाया करते थे।

हम लोग अपने हिसाब के कागज़, पेंसिल और अपने तरीकों से वो हिसाब करते थे। साथ में वो लोग अपने तरीकों से भी उसी हिसाब को करते रहते थे। बहुत बार ऐसा हुआ कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे को पैसा उधार दे रहा है और मुझे बुलाया गया कि भाई तुम ज़रा यह लिख दो, कि इस-इस तरह से दिया जिसमें ब्याज, दर वगैरह सब कुछ लिखवाते थे।

अब देखिए कुछ महीने बाद वो व्यक्ति पैसे लौटा रहा है तो सामान्यतः मुझे ही वापस बुलाया जाता था। पैसे देने वाला मूल, ब्याज आदि की गणना पहले से करके रखता था लेकिन इसके बावजूद वो थोड़ा-सा यह देखना चाहता था कि जिसने हिसाब लिखा है वो भी उस ढंग से करता है क्या? इससे हमारे ऊपर भी गांव वालों के सामने यह सिद्ध करने की बात रहती थी कि हम हिसाब ठीक से कर पाएं। ये स्थिति बड़ी अजीब- सी होती थी जिसमें एक तरह का मानसिक दबाव तो था लेकिन स्कूली तरह का डर नहीं होता था। उसके साथ कहीं एक गहरा संतोष इस बात से मिलता था कि हमारे बुजुर्ग हमारी किसी खास क्षमता को सराहते या मानते हैं कि इस बच्चे में यह क्षमता तो आ गई है।

तो मैं यह कह सकता हूं कि मुझे गणित अच्छे लगने के पीछे एक कारण तो यह है कि जिस समुदाय में मैं पला बढ़ा उसमें गणित को विशेष दर्जा मिला हुआ था।

●

दूसरा बड़ा कारण था मेरे पिताजी का गणित के प्रति रुझान। मुझे जहां तक याद है वे दो-तीन चीज़ों पर बहुत बल देते थे - गणित उनमें से एक था।

वे किसी व्यक्ति की प्रतिभा को उसकी गणितीय क्षमताओं और गणित की समझ के आधार पर ही नापते थे। यह शायद मुझे तब समझ नहीं आता था लेकिन जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूं तो पाता हूं कि वे जब भी कभी तीव्र बुद्धि व्यक्ति का उदाहरण देते थे तो वे प्रायः गणितज्ञों के उदाहरण हुआ करते थे। गणित को अच्छी तरह से समझना और गणित में खूब अच्छी तरह से काम कर पाना उनके लिए बुद्धिमत्ता का प्रमाण था। जब मैं गणित में अच्छा करता था या लोगों की दी हुई समस्याओं का हल करता तो देखता था कि वे बहुत संतुष्टि महसूस कर रहे हैं। ये दूसरी बात है जो गणित के प्रति मेरा रुझान बढ़ाने में मददगार साबित हुई।

●

तीसरी बात जो मुझे महत्वपूर्ण लगती है, वो एक विशेष घटना है या यों कहें कि तीन-चार मिली-जुली घटनाएं हैं। एक तो जब मैं तीसरी कक्षा में पढ़ता था तब की बात है। हमारा स्कूल लगभग बंद था। नाममात्र को ही चल रहा था। मेरे पास तीसरी कक्षा की सभी पुस्तकें तो नहीं थीं - सिर्फ गणित की ही किताब थी। मैं उसी को पढ़ता रहता था। हमारे गाँव के और भी बड़े बच्चे स्कूलों में जाते थे – छठवीं, सातवीं, आठवीं में पढ़ने वाले। उनमें से एक मेरे चाचा भी थे। मैं उनसे सवाल पूछता रहता और खुद करता था। इससे भी शायद रुझान बना। घटनाओं के क्रम में एक और चीज़ है जिसका मुझे लगता है कि काफी बड़ा हाथ है गणित के प्रति मेरी समझ बनाने में।

मैं छठवीं या सातवीं में था तब हमारे एक शिक्षक थे। बच्चे उन्हें बहुत पसंद करते थे लेकिन स्कूल का संचालक शायद उन्हें बहुत पसंद नहीं करता था। स्कूल पूरी तरह से ऐसे लोगों के हाथ में था जो शिक्षा के बारे में तो कुछ भी नहीं जानते। बस सेठों से पैसे लाने में सक्षम थे और राजनीति किया करते थे।

उन्होंने अपने एक व्यक्ति को प्राइमरी से मिडिल में लाने के लिए हमारे शिक्षक को हटाकर प्राइमरी में लगा दिया। जो शिक्षक हटाए गए थे

पिताजी जब किसी तीव्र बुद्धि व्यक्ति का उदाहरण देते तो वे प्रायः गणितज्ञों के उदाहण हुआ करते। गणित को अच्छी तरह से समझना और उसमें खूब अच्छी तरह से काम कर पाना उनके लिए बुद्धिमत्ता का प्रमाण था।

वे हमें गणित और विज्ञान पढ़ाते थे और ये जो नए सज्जन प्राइमरी से आए थे वे भी गणित और विज्ञान पढ़ाने लगे। एक सप्ताह में ही हमें पता चल गया कि इन्हें ठीक से गणित नहीं आती - वो भी छठी-सातवीं की गणित जिसमें कुछ खास तो होता नहीं था लेकिन वे उसमें उलझ जाते थे।

उनकी इस कमज़ोरी से हमें मौका मिला। मैं लगातार उनसे आगे चलने की कोशिश करता था - दूसरे लोगों की मदद से। हमारे गांव के कुछ नवीं, दसवीं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों से मैं पहले ही प्रश्नावली समझ लेता और जानबूझकर कक्षा में नए शिक्षक को उलझाने की कोशिश करता। इसके पीछे हमारा मंतव्य यही था कि वे शिक्षक जिनको हम पसंद करते थे, उन्हें वापस गणित पढ़ाने के लिए लगा दिया जाए।

इसमें हम लोगों को सफलता मिली हालांकि जद्दोजहद काफी लंबी चली। लेकिन एक चीज़ यह हुई कि उसके बाद मैं गणित में हमेशा पूरी कक्षा से आगे रहता। मुझे इस बात का कुछ खास फर्क नहीं पड़ता था कि शिक्षक ने वो प्रश्नावलियां या वो अध्याय पढ़ाए हैं या नहीं। मै स्वयं उनको पढ़ने की कोशिश करता था। फिर धीरे-धीरे मुझे ऐसा लगने लगा कि दिमाग पर खूब ज़ोर लगाओ तो गणित वाली चीज़ें आ ही जाती हैं।

इसी दौरान मैंने एक बहुत बचकाना प्रयत्न भी किया। उसी साल की बात है जब मैंने गणित पर खूब ध्यान दिया तो कहीं मेरे दिमाग में एक चीज़ आई कि गणित में कुछ नहीं है, सिर्फ संख्याएं हैं और संख्याओं के बारे में भी उस वक्त मेरा मानना था कि वास्तव में संख्याएं एक से सौ तक ही होती हैं। बाद में तो उन्हीं का पुनरावर्तन होता रहता है और उसके आधार पर नई संख्याएं बन जाती हैं। उस वक्त मैंने एक छोटी-सी किताब लिखने की कोशिश भी की। जिसमें कहने की कोशिश की कि गणित में कुछ नहीं होता - सिर्फ एक से सौ तक की संख्याएं होती हैं, संख्याओं के लिए चिन्ह होते हैं, जोड़-बाकी गुणा-भाग होते हैं और इन्हीं चीज़ों को पलट-पलट कर तरह-तरह के काम में लिया जाता है।

मेरे सामने पहली समस्या इस स्वरूप को संपूर्ण साबित करने के संदर्भ में थी - बीजगणित की, क्योंकि उन दिनों बीजगणित कम ही पढ़ते थे। लेकिन उसका हल तो बड़ा आसान है और मैंने निकाल लिया। फिर बीच में मुझे ये चीज़ इसलिए छोड़नी पड़ी

क्योंकि मैं रेखागणित को इसमें समाहित नहीं कर पाया। लेकिन बहुत दिन तक मेरे दिमाग में ये बात रही कि क्या कोई ऐसा तरीका हो सकता है जिसके आधार पर हम गणित की कुछ मूल चीज़ें पकड़ लें और उसके आधार पर कहें कि बाकी चीज़ यही है और उसमें से निकाल सकता हूं। जब भी मैं मुड़ के उस बात को याद करता हूं तो बड़ी अजीब बात लगती है। क्योंकि ये ही कुछ बहुत बड़े गणितज्ञों की चिंताएं भी रहीं हैं। जिन पन्नों पर मैंने वो अध-कचरी बाते लिखीं काफी साल तक मेरे पास थे।

अचानक लगा कि मैं ये समस्याएं इसलिए हल नहीं कर पा रहा हूं क्योंकि मैं सारी-की-सारी समस्या को एक साथ देख रहा हूं। जबकि इसमें बहुत सारी छोटी-छोटी समस्याएं हैं और यदि उनको अलग-अलग करके बारी-बारी हल करूं और फिर एक साथ बिठाऊं तो शायद यह हल हो जाएगी।

जब भी कोई नई चीज़ मेरे सामने आती है तो मैं हमेशा यह कोशिश करता हूं कि उसकी मूल बातों को पकड़ कर यह समझ लूं कि वह किन सिद्धांतों पर आगे बढ़ती है। यह कोशिश तो मैं हर चीज़ में करता रहा हूं, लेकिन नतीजा यह रहा है कि मैं बहुत खराब विद्यार्थी था। जो विषय मेरी पकड़ में आ जाते थे उनमें तो मैं बहुत अच्छा करता था। पर बहुत सारे विषय जो पकड़ में नहीं आए, उन सबमें मैं हमेशा फिसड्डी किस्म का रहा। जैसे इतिहास में मुझे बहुत दिनों के बाद इस तरह के संबंध समझ में आने शुरू हुए। जब तक वे समझ में नहीं आए तब तक मैं उसे बिल्कुल नहीं पढ़ता था, न ही उसमें रुचि लेता था।

तीसरी घटना लगभग उस वक्त का है जब मैं कॉलेज के दूसरे साल में पढ़ता था। उन दिनों मैं कुछ गहरे व्यक्तिगत तनावों से गुज़र रहा था। मुझे अच्छी तरह याद है एक दिन गणित की कुछ समस्याएं हल कर रहा था जो बिल्कुल समझ में नहीं आ रही थीं। अचानक लगा कि मैं ये समस्याएं इसलिए हल नहीं कर पा रहा हूं क्योंकि मैं सारी-की-सारी समस्या को एक साथ देख रहा हूं। जबकि इसमें बहुत सारी छोटी-छोटी समस्याएं हैं और यदि उनको अलग-अलग करके बारी-बारी हल करूं और फिर एक साथ बिठाऊं तो शायद यह हल हो जाएगी। मैंने ऐसी कोशिश भी की और काफी हद तक सफल भी हुआ। रात में जब ये चीजें

हल कर रहा था तो अचानक ऐसा लगा कि मेरी जो व्यक्तिगत समस्याएं हैं वे भी इतनी जटिल, बोझिल और तनावपूर्ण इसलिए लग रही हैं क्योंकि मैं बहुत सारी चीज़ों को एक साथ मिलाकर देख रहा हूं। अगर उनके छोटे-छोटे टुकड़े करूं तो शायद अधिक सफलता मिलेगी और मैंने वैसा ही करने की कोशिश भी की। यह ज़रूरी नहीं है कि सब लोगों के साथ ऐसा ही हो लेकिन मुझे इससे बहुत बल मिला, मैं कुछ नतीज़ों पर पहुंच पाया।

मुझे हमेशा लगता रहा है कि एक खास प्रकार का चिंतन है - चीजों को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़कर उनके बारे में सोचना, उनके सारे पहलुओं को देखकर फिर से उन्हें आपस में जोड़ना - ये प्रक्रिया मैंने गणित से सीखी है और इससे मुझे अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने में बहुत मदद मिलती रही है। इसके कारण गणित के प्रति एक प्रकार का आभार महसूस करने लगा हूं।

●

ये सब व्यक्तिगत कारण हैं, या फिर ऐसा कह सकते हैं कि अतीत से संबंधित कारण हैं। मुझे लगता है कि हमें दूसरी तरफ भी देखने की ज़रूरत है। बहुत सारी बातें ऐसी हैं जो मानसिक बनावट और गणित के स्वरूप से संबंधित हैं। वे सब तो इसमें आ गई हैं लेकिन कुछ ऐसी हैं जिनको काफी हद तक शुद्ध बौद्धिक कहा जा सकता है। हम सब जानते हैं कि अधिकतर, गणित विभिन्न प्रकार की चीज़ों में आपसी संबंध ढूंढने का काम करता है। या दी गई परिस्थिति में कुछ इस प्रकार की चीज़ें खोजने की कोशिश करता है जिनके आधार पर पूर्वानुमान संभव बनते हैं। और जहां भी पूर्वानुमान होता है वहां व्यक्ति एक प्रकार की सुरक्षा महसूस करता है। हमें पता रहता है कि आगे क्या होने वाला है, भविष्य से हम बिल्कुल अनजान नहीं रहते। यह बात मुझे आकर्षित करती है। इस प्रकार के संबंध ढूंढने में गणित को अवधारणात्मक परिकल्पनाएं और संरचनाएं विकसित करनी पड़ती हैं। ये संरचनाएं अपने आसपास के परिवेश के बारे में हमारे पूर्वानुमान का सामर्थ्य बढ़ाती हैं। साथ ही चिंतन की शक्ति का एक अनुभव देती हैं।

एक खास प्रकार का चिंतन है - चीज़ों को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़कर उनके बारे में सोचना, उनके सारे पहलुओं को देखकर फिर से उन्हें आपस में जोड़ना - ये प्रक्रिया मैंने गणित से सीखी है।

ऐसा नहीं है कि ये बातें सिर्फ गणित में होती हैं, सारे मानवीय ज्ञान में शायद यही होता है और इसे करने की कोशिश में हम लोग सदैव लगे रहते हैं। लेकिन गणित इसका एक बहुत ही सशक्त उदाहरण है।

एक और बात है - गणित का शुद्ध बौद्धिक आनंद। पता नहीं ये चीज़ कितने लोग महसूस करते होंगे लेकिन बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जिनके ऊपर कम-से-कम मैं तो काफी समय लगा सकता हूं और लगाता रहता हूं। मुझे याद है कि जब मैं हायर-सेकेण्डरी में था तो मुझे किसी ने ताश के पत्तों का एक जादू बताया था। जिसमें 51 पत्तों को लेकर किसी अन्य व्यक्ति से कहना होता है कि वो किसी एक पत्ते के बारे में सोच ले। फिर आप उन सब पत्तों को तीन ढेरियों में बांटते जाते हैं और उस व्यक्ति से पूछते हैं कि उसका सोचा हुआ पत्ता कौन-सी ढेरी में है। उसके बाद उन तीनों ढेरियों को इकट्ठा कर लेते हैं, इस बात का ध्यान रखते हुए कि जिस ढेरी की तरफ उसने इशारा किया है उसे बीच में रखना है। दोबारा फिर तीन ढेरियां बनाते हैं और पूछते हैं कि उसका पत्ता कौन-सी ढेरी में है। इस बार भी उसकी बताई हुई ढेरी को बीच में रखते हैं। ऐसा ही तीसरी बार भी करने पर सोचा हुआ पत्ता उन 51 पत्तों के ठीक बीच में आ जाता है। जब ये जादू मुझे सिखाया गया तो मैंने बहुत सोचा कि मामला क्या है, ये पत्ता बीच में कैसे आ जाता है। मुझे अब भी याद है कि मैंने कोई एक दस्ता कागज़ यही पता करने के लिए भर दिए थे। ये सही है कि कोई भी गणित का शिक्षक ये बात शायद 10-15 मिनट में ही समझा सकता था। लेकिन मैंने जितने प्रयत्न किए, जितनी तरह की समीकरणें बनाईं और उनके हल निकाले, उस सब में मुझे बड़ा आनंद आया।

इस प्रकार की चीज़ें मेरे साथ बहुत बार होती रहती हैं। ये कहना मुश्किल है कि क्योंकि मुझे गणित अच्छी लगती है इसलिए ऐसा होता है, या फिर ऐसी बातें होती रहती हैं इसलिए गणित अच्छी लगने लगी - सवाल काफी टेढ़ा है क्योंकि यहां तक आते-आते दोनों ही बातें एक-दूसरे में एकदम घुलमिल-सी जाती हैं।

(रोहित धनकर - राजस्थान में प्राथमिक शिक्षा और स्वास्थ्य को लेकर बच्चों के बीच काम कर रही संस्था दिगान्तर, टोड़ी रमजानपुरा, जयपुर से संबद्ध)